मातृभाषा और गणित शिक्षण

सुधीर श्रीवास्तव

इस लेख में कक्षा तीन के बच्चों के साथ वृत्त की अवधारणा पर बातचीत के अनुभव साझा किए गए हैं। अनुभवों का यह विवरण -बच्चों के सीखने-सिखाने से सम्बन्धित कई बिन्दुओं को उभारता है।

सबसे पहले यह कि मातृभाषा में शिक्षण हो सकता है और काफ़ी सहजता से हो सकता है, यह भी कि मातृभाषा में कक्षा में बातचीत बच्चों को तरह-तरह से सोचने के मौक़े उपलब्ध कराती है, जैसे जो पूछा जा रहा है उसके जवाब देना, लेकिन साथ ही उन अनुभवों के बारे में सोचना जो अभी सामने नहीं हैं, उन अनुभवों को जोड़ पाना और उसमें कुछ निष्कर्ष निकाल पाना। कक्षा का विवरण पढ़ने पर यह बिन्दु सहज रूप से खुलते जाते हैं। ये भी समझ आता है कि किसी गणितीय अवधारणा को समझने में बच्चों के पूर्व ज्ञान का क्या अर्थ है, बच्चों से किस प्रकार के प्रश्न किए जा सकते हैं ताकि वे अपनी समझ को खँगाल सकें, किसी अवधारणा पर कैसे आगे बढ़ा जा सकता है आदि। सं.

छत्तीसगढ़ राज्य में नई पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के समय की यह बात है। पाठ्यपुस्तक लेखन का एक अहम हिस्सा यह था कि लेखन कार्य से जुड़े सदस्य निर्धारित समयान्तराल में उन शालाओं में जाया करते थे जहाँ बनाई गई पुस्तकों को लेकर सीखने-सिखाने का काम हो रहा था। उन शालाओं में शिक्षकों को बच्चों के साथ काम करते हुए देखना, उनसे उनके अनुभव सुनना, बच्चों के साथ अध्यायों पर बातचीत, उनकी प्रतिक्रियाएँ लेना, आदि काम होता था।

उस दिन मैं सुबह आठ बजे ही उस शाला में पहुँच गया था जो विकासखण्ड मुख्यालय से लगभग चालीस किलोमीटर दूर जंगलों के बीच बसे एक गाँव के बाहर स्थित थी। शाला में एक शिक्षिका और तीन शिक्षक कार्यरत थे / दिव्या, गोकुल, विराज और सुनील पैंकरा।

शाला भवन काफ़ी पुराना था। सुनील ने बताया कि इसी भवन में उनके पिताजी ने भी पढ़ाई की थी। इतने पुराने स्ट्रक्चर को लोगों ने जो हिफ़ाज़त दी थी वह उनके लगाव को बयाँ कर रही थी। क़रीब पाँच फीट ऊँचे चबूतरे पर बना एक बड़ा और बीस फीट ऊँचा हाल, उसके चारों ओर बने अपेक्षाकृत कुछ कम ऊँचाई के खुले बरामदे। शिक्षिका उत्तर की तरफ़ के बरामदे में कक्षा एक और दो के बच्चों के साथ भाषा पर काम कर रही थीं। मैं हॉल में बने स्टाफ रूम में ही तीनों शिक्षकों के साथ बैठा था।

हमने उस दिन गणित सीखने-सिखाने में गणित की पाठ्यपुस्तकें मदद करती हैं या नहीं, इसपर बातचीत की। बातचीत में थोड़ी देर बाद शिक्षिका भी सम्मिलित हो गई थीं।

उन्होंने जो बातें कहीं, उसका सारांश था कि गणित की नई किताबें पहले से थोड़ी अलग

हैं। चित्र बहुत हैं जो समझने में मदद करते हैं। पाठ भाषा के पाठों की तरह बने हैं जिनमें गणित को समझाने की कोशिश की है। कई पाठ ऐसे हैं जो बिलकुल नए हैं, ऐसे पाठ गणित में पहले नहीं हुआ करते थे। प्रश्नावलियाँ और प्रश्न भी कम हैं। उदाहरण काफ़ी हैं और नए प्रश्न बनाने की बातें लिखी हैं। बच्चों के करने के लिए कई गतिविधियाँ सुझाई गई हैं।

जब उनसे पूछा गया कि क्या इसके अनुसार काम करने में कोई कठिनाई है, उनके जवाब थोड़े निराश करने वाले थे। उनका कहना था, "पहले पढ़ाना आसान था। दो-चार सवाल बोर्ड पर समझाते थे और बच्चे वैसे ही सवाल हल करने की कोशिश करते थे। जो बच्चे पढ़ने में ठीक होते थे वे नए सवाल हल कर लेते थे, बाक़ी बच्चे उनसे देखकर बना लेते थे। अब गतिविधियाँ हैं। एक तो इसके अनुसार काम करने में समय बहुत लगता है, दूसरे हमें इसकी आदत नहीं है। गतिविधियों के लिए कई तरह के सामान जुटाने की ज़रूरत पड़ती है, वह सब कहाँ से लाएँ, यह भी एक समस्या है। जो प्रशिक्षण हुए उनमें कहा गया कि बच्चे बहुत-सी बातें पहले से जानते हैं उनका पता करो और उनके अनुभवों को शामिल करते हुए पाठ को आगे बढ़ाओ। यह तो सोचने वाली बात है कि बच्चों को सब पहले ही पता होता तो उन्हें सिखाने की ज़रूरत ही क्यों पड़ती! पहले किताबों में पर्याप्त प्रश्न होते थे, इससे बच्चों का अच्छा अभ्यास हो जाता था। धीरे-धीरे वे नियमों को सीख जाते थे। जो नए प्रकार के पाठ जुड़े हैं उनमें गणित कहाँ है यही समझ में नहीं आता, जैसे– पैटर्न बनाओ, छोटे-बड़े, हल्के-भारी की तुलना करो, और भी ऐसे कितने पाठ हैं।"

चित्र : हीरा धुर्वे

उनकी बातें सुनते हुए मुझे यह लग रहा था, यह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। हमारी पीढ़ी के लोगों ने जैसी कक्षाओं में पढ़ाई की है वहाँ गणित की कक्षाओं में आपसी बातचीत और मिलकर समझ बनाने के मौक़े नहीं के बराबर होते थे। प्राथमिक कक्षाओं में ही नहीं, बल्कि आगे के सभी स्तरों में गणित पढ़ाने का प्रायः एक ही ढंग हुआ करता था। अध्यापक बोर्ड पर कुछ सवाल हल कर देते थे और बच्चे उनकी कॉपी करते थे। बचे हुए सवालों को घर से बनाकर लाने के निर्देश का पालन करना पहाड़ पर चढ़ने जैसा हुआ करता था।

मैंने पूछा, "और कैसी-कैसी मुश्किलें आती हैं? कृपया यह भी बताएँ।" अब जो उनके जवाब थे, वे बच्चों और उनके अभिभावकों से जुड़े थे। उनके अनुसार, घरों में पढ़ने-लिखने का माहौल नहीं है। जो भी पढ़ाई होती है स्कूल समय में ही होती है। बच्चे ठीक से अपनी पुस्तकें नहीं पढ़ पाते। गणित में तो उनकी स्थिति और बुरी है।

सुनील ने कहा, "आप बताइए सर, क्या करें कि बच्चे अच्छे-से सीखने लगें। वे सीखेंगे, बताएँगे तो इससे हम सभी को अच्छा लगेगा। पर कोई रास्ता हम ढूँढ़ नहीं पा रहे हैं।"

मैंने कहा, "यह सबकुछ उतना मुश्किल भी नहीं है जितना दिखाई पड़ता है। पहले यह समझने की ज़रूरत है कि जिन बातों को अपनाने की सिफ़ारिश की जाती है उसके पीछे क्या विचार निहित है। फिर उन्हें अपनी परिस्थितियों और सन्दर्भों में आज़माकर देखने की आवश्यकता होती है। यदि परिणाम बेहतर आते हैं तो इसका मतलब है कि इसपर सोचे

जाने की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए, एक बात उठाते हैं। पाठ्यपुस्तकों की रचना करते समय इस विश्वास को जगह दी गई कि बच्चे जब स्कूल आते हैं तो उनके पास उनकी एक सशक्त भाषा होती है जिसकी मदद से वे अपने विचार और अनुभव रख सकते हैं। दूसरी बात, वे स्कूल और किताबों के बाहर की दुनिया में भी बहुत-सी बातें देखते-सुनते हैं। ये बातें उनके दिमाग़ में निश्चित रूप से अपनी जगह बनाती हैं। वे उनपर सोचते हैं, आपस में बातें भी करते हैं। उनके ऐसे अनुभवों का संसार बहुत विस्तृत होता है। अब यदि एक शिक्षक के रूप में कुछ नए विचार हम उनके सामने रखना चाहते हैं तो ऐसा करने के एक से ज़्यादा विकल्प हमारे सामने होते हैं।

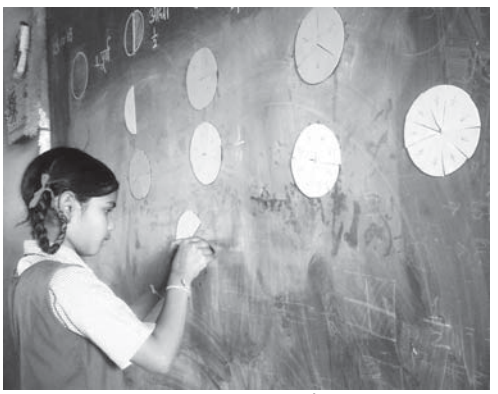

चित्र : संगीता पिपले

सबसे आसान होता है कि सीधे-सपाट तरीक़े से अपनी बात उनसे कह दें। दूसरा तरीक़ा हो सकता है कि हम उनके भीतर यह टटोलने की कोशिश करें कि इस नए विचार से जुड़े क्या-क्या अनुभव उनके पास हैं, उनपर बातचीत करते हुए उन्हें इसके आगे के नए विचारों से जोड़ते चले जाएँ। इनसे आगे एक तरीक़ा और भी सम्भव है कि उनके आगे प्रश्न या शंकाएँ छोड़ दी जाएँ। उन्हें ढूँढ़ने दिया जाए अपने-अपने उत्तरों को। इस प्रक्रिया में उन्हें आपस में बातें करने, अपने तरीक़े और संसाधन चुनने और उपयोग करने की स्वतंत्रता देनी होगी। इनके अलावा और भी तरीक़े हो सकते हैं। क्या आप लोगों को इन तीनों तरीक़ों में कोई फ़र्क़ नज़र आता है?''

कुछ देर बाद दिव्या ने कहा, ''मुझे लगता है मैं पहले तरीक़े का उपयोग करती हूँ। कहानी सुनाना हो या कविता का पाठ पढ़ाना या गिनती सिखाना... हर काम में मैं ही बोलती रहती हूँ। बच्चे बस मुझे देखते-सुनते रहते हैं। अब सोच रही हूँ तो ऐसा लग रहा है कि कुछ कहानियाँ बच्चे भी ज़रूर जानते होंगे, लेकिन कभी मैंने उनसे पूछा नहीं। अगर पूछती तो उनको भी बोलने का मौक़ा मिल सकता था। हो सकता है कक्षा में नियमित ऐसा करने पर ये घर से नई कहानियाँ सुनने और कक्षा में सुनाने की कोशिश शुरू कर देते।''

विराज ने कहा, ''आपने तीन उदाहरण रखे। उनमें मुझे एक जो बात दिखाई दे रही है वह यह कि बाद की दोनों प्रक्रियाओं में बच्चे चुपचाप सुनने वाले की भूमिका में नहीं हैं। उन्हें सोचने और ख़ुद से करने के मौक़े मिल रहे हैं। इससे एक फ़ायदा तो दिख रहा है कि वे जो करेंगे उससे हमें पता चल सकेगा कि उनके दिमाग़ में क्या चल रहा है। उनका काम, उनकी बातचीत उनके दिमाग़ में झाँकने वाली खिड़की का काम करते हैं।''

गोकुल ने विराज की बात में एक बात और जोड़ी। उन्होंने कहा, ''मैं भी अपनी कक्षा में सबकुछ ख़ुद ही करता रहता हूँ। इससे यह तो लगता है कि काम जल्दी से पूरा हो गया, लेकिन पता नहीं चलता कि किस बच्चे ने समझा किसने नहीं। पूछने पर सभी बच्चे एक स्वर में कहते हैं, 'हाँ सर, समझ गए'।''

सुनील ने कहा, ''ऐसा लगता है कि ये तरीक़े ज़्यादा कारगर हैं जिनमें बच्चों का सोचना और करना शामिल है किन्तु कक्षा में यह होगा कैसे? क्या ऐसा कोई पाठ आप पढ़ाकर बता सकेंगे? इससे हो सकता है हमें कोई दिशा मिले।''

मैंने शिक्षक साथियों से कहा कि मैं एक प्रयास ज़रूर करूँगा। मुझे नहीं मालूम कि यह कक्षा सही मायनों में एक उदाहरण बन सकेगी। और यदि ऐसा हुआ भी तो आप उसे कोई मानक कक्षा के रूप में स्वीकार न करें, नहीं तो

आपकी सोच उसके साथ बँधकर रह जाएगी। आप जब काम करें तो वैसा ही न करें। मेरा जो भी ढंग हो वह कई तरीक़ों में से एक होगा।

कक्षा अनुभव

कक्षा में वापस आने की घण्टी बजी। थोड़ी ही देर में सभी बच्चे अपनी-अपनी कक्षा में पहुँच गए। शिक्षक उनको कुछ काम देकर हॉल में आ गए जहाँ तीसरी और चौथी कक्षा के बच्चे सम्मिलित रूप से बैठे थे।

इतनी देर में मैंने तय कर लिया था कि इन बच्चों के साथ 'वृत्त' पर बात करूँगा, क्योंकि वे इसे अपने आसपास अलग-अलग वस्तुओं में देखते हैं पर साथ ही दूसरी चिन्ता जो दिमाग़ में चल रही थी वह थी बच्चों के साथ बातचीत की भाषा क्या चुनूँ। मैंने देखा कि बच्चे छत्तीसगढ़ी में बात कर रहे थे। शिक्षकों के साथ उनके संवाद की भाषा भी यही थी। एक अपरिचित व्यक्ति के रूप में मैं यदि उनके साथ हिन्दी में बात करूँ तो पता नहीं वे मेरे साथ जुड़ना पसन्द भी करेंगे या नहीं। और यदि शिक्षक बच्चों के साथ जुड़ न सका तो सम्प्रेषण की स्वीकार्यता भी स्थापित न हो सकेगी। छत्तीसगढ़ी का उपयोग मैं व्यक्तिगत बातचीत में तो करता रहा हूँ, लेकिन कक्षा को इसमें कभी सम्बोधित नहीं किया था। बड़ी हिचकिचाहट महसूस हो रही थी, पर मैंने तय किया कि छत्तीसगढ़ी में ही बात करूँगा।

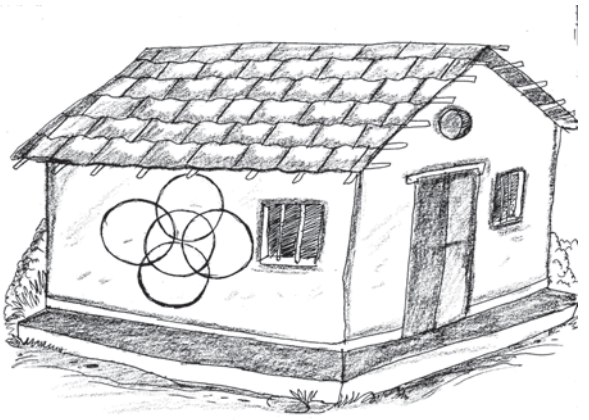

चित्र : हीरा धुर्वे

विराज मुझे लेकर उस कक्षा में गए। बच्चों ने लम्बे सुर में 'गुडमार्निंग सर...' कहा। मैंने भी उसी अन्दाज़ में 'नमस्ते' कहा। विराज ने मेरा परिचय कराया और कहा कि मैं उनसे बातें करूँगा।

एक बच्चे के बस्ते के पास कपड़े की बनी एक गेंद रखी थी। मैंने उसे उठाया और उलट-पलट कर ध्यान से देखा। वज़न और आकार के अच्छे तालमेल से बनी वह गेंद सचमुच अच्छी बनी थी। मैंने मुस्कुराकर पूछा, "बड़ सुग्घर बने है, कोन बनाइस एला?" (बड़ा सुन्दर बना है किसने बनाया इसे?)

जिस बच्चे ने बनाया था उसने शरमाकर सिर झुका लिया। दूसरे बच्चे उसकी ओर मुस्कुराकर देखने लगे। बोलकर किसी ने जवाब नहीं दिया। जवाब तो मिल गया पर मैं चाहता था बात शुरू करें। मैंने फिर कहा, "अब्बड़ बढ़िया गेंद बनाए हस जी। महूँ ल सिखाबे?" (बहुत बढ़िया गेंद बनाए हो जी! मुझे भी सिखाओगे?)

अब यह बच्चा खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर संकोच, ख़ुशी और गर्व के मिले-जुले भाव थे। उसने अपना चेहरा छुपाते हुए धीरे से कहा, "हा हो, सरजी।" (हाँ, सरजी।)

"बेटा! तोर नाँव का है?" (बेटा, तुम्हारा नाम क्या है?) मैंने पूछा।

"कातिक!"

"अच्छा! तो ले बता कातिक कइसे बनाए?" (अच्छा तो बताओ कातिक कैसे बनाई?)

"सरजी, टेलर इहाँ ले थोकन चेंदरी लाएँ। ओला गोल-गोल गुरमेट के सुतरी ले बाँधेंव।

तहाँ ले सुतरी ल चारों डहर अउ लपेटेंन। फेर एला एकठन जुन्ना मोजा में ख़ुसेर देंव। अउ सूजी धागा ले सिल देंव।" (सरजी! टेलर के यहाँ से थोड़ी कतरन लाया। उसे गोल-गोल ऐंठकर सुतली यानी सन की डोरी से बाँध दिया। इसके बाद सुतली को चारों ओर लपेट दिया। फिर से एक पुराने मोजे में घुसा दिया और सुई-धागे से सिल दिया।)

"वाह भई, वाह!" ऐसा कहकर मैंने ज़ोर से ताली बजाई। सारे बच्चे तालियाँ बजाने लगे। जब तालियों का शोर कम हुआ तो मैंने पूछा, "अच्छा, मोला अब ये बतावा के गेंद ला चाक के डब्बा सँही चौखुँटा काबर नई बनाएँ?" (अच्छा! मुझे अब यह बताओ कि गेंद को चॉक के डिब्बे की तरह चौकोन क्यों नहीं बनाते?)

कक्षा शान्त हो गई। सारे बच्चे सोचने लगे। एक बच्ची ने धीरे से कहा, "धरत नई बनहीं सरजी!" (पकड़ते नहीं बनेगा सरजी!)

"बढ़िया।" मैंने कहा।

दूसरे बच्चे ने हाथ उठाया और कहा, "चाक के डब्बा हर गेंद सँही नईं ढुलगै सरजी।" (चॉक का डिब्बा गेंद की तरह लुढ़कता नहीं सरजी!)

बातचीत की गाड़ी अब चल पड़ी थी। एक बैरियर टूट चुका था।

"अच्छा! तो गेंद हर ढुलंगथे अउ चाक के डब्बा हर नई ढुलगै। एकरे बर गेंद ला चाक के डब्बा असन नई बनाएँ।" (अच्छा! तो गेंद लुढ़कती है और चॉक का डिब्बा नहीं लुढ़कता। इसीलिए गेंद को चॉक के डिब्बे जैसा नहीं बनाते।)

"ठीक! तो अब ये बताबौ के अउ का का जिनिस हर ढुलंगथे?" (ठीक! तो अब यह बताओ कि और कौन-कौन सी चीज़ें लुढ़कती हैं?)

कक्षा एक बार फिर सोचने वाले मोड में चली गई। इस बार बच्चे आगे-पीछे और अगल-बग़ल वाले साथियों के साथ ख़ुसुर-पुसुर करने लगे। मैंने उनकी इस बातचीत को रोकने की कोशिश नहीं की। मुझे ऐसा लगता है यह उद्देश्यपूर्ण और सार्थक विमर्श का एक सुन्दर अवसर होता है जब बच्चे मिलकर किसी समस्या का हल ढूँढ़ते हैं, अपने विचार रखते हैं, परखते हैं, कभी निरस्त करते तो कभी चुनते हैं।

दो-तीन मिनट में ही वे मेरी ओर देखने लगे। उनके चेहरे बयाँ कर रहे थे कि उन्होंने कुछ-कुछ जवाब तो ढूँढ़ ही लिए हैं।

"कोन बताही जी?" (कौन बताएगा जी?) मैंने हँसकर पूछा।

बहुत-से बच्चों ने हाथ उठा दिए। कुछ कहने लगे, "मैं बतावों सरजी? मैं बताहूँ सरजी।" सच कहूँ, बच्चों का ये उतावलापन, उनके चेहरे पर दमकता आत्मविश्वास, ख़ुद को साबित करने की उनकी ललक मुझे आनन्द और ऊर्जा से भर देती है। कभी सोचता हूँ तो लगता है यह भी उन चीज़ों में से एक है जो मुझे बच्चों से भरी कक्षाओं की ओर खींचती हैं, ख़ैर!

बच्चों की आतुरता देख मैं बोर्ड के पास आया और कहा, "चाक लेवा अउ अपन-अपने उत्तर ला बोर्ड का लिखा।" (चॉक लो और अपने-अपने उत्तरों को बोर्ड पर लिखो)।

आधे से अधिक बच्चे बोर्ड पर झूम गए। कोई बैठकर, कोई खड़ा होकर, जहाँ जगह दिखी वहाँ अपना उत्तर लिखने लगे। थोड़ी ही देर में सब अपनी-अपनी जगह पर जा बैठे। अभी-भी उनकी बातचीत जारी थी। अब उनकी चर्चा के विषय दूसरे बच्चों के जवाब थे। वे अपनी कल्पनाओं में उन्हें लाकर जाँच रहे थे कि सचमुच क्या वे चीज़ें लुढ़कती हैं। उन्होंने जो लिखा था उनमें ये नाम शामिल थे :

बॉटी (कंचा), चक्का, चूड़भ् (चूड़ी), सिक्का, गेंद, चॉक, लाडू (लड्डू), भौरा (लट्टू), टायर, बोतल, मरकी (मटका), पाइप, थारी (थाली), गिलास, आदि।

इनपर थोड़ी और बातचीत हुई। इस सूची में से उन्होंने कुछ चीज़ों के बारे में कहा कि कभी लुढ़कती हैं, कभी नहीं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि फ़र्श पर उन्हें किस तरह रखा गया है, जैसे– टायर, चूड़ी, गिलास, सिक्का। वे इस प्रकार बेलनाकार, चकती या डिस्क और वृत्ताकार चीज़ों को गोलों से अलग करके देख पा रहे थे। उनके शब्द भण्डार में अभी ये गणितीय शब्द शामिल नहीं थे, पर गुणों के आधार पर उन्होंने इनके बीच अन्तर को अपने ढंग से अच्छी तरह से व्यक्त कर लिया।

कक्षा में पूरा संवाद छत्तीसगढ़ी में हुआ। लेकिन आगे की बातचीत को मैं सीधे हिन्दी में लिखता हूँ। मैंने उनसे पूछा, "वे कौन-कौन सी चीज़ें हैं जो सामान्य परिस्थितियों में समतल पर लुढ़केंगी ही।" उनका जवाब था, "गेंद, कंचा, लड्डू कैसे भी रखे जाएँ, लुढ़केंगे।" यानी जो चीज़ें गोल होंगी वे लुढ़केंगी ही।

चूड़ी, चक्का, टायर, सिक्का जैसी चीज़ों के बारे में उन्होंने कहा, "यदि इन्हें ज़मीन पर 'लिटा दिया जाए' तो ये नहीं लुढ़केंगी। इन्हें खड़ा करके धकेलने पर ही ये लुढ़केंगी।"

अब मैंने पूछा, "हम गोला किसे कहें?"

"सरजी! गेंद, बॉटी और लड्डू गोले हैं।"

"तो क्या चूड़ी, सिक्के और टायर को गोल कहें?" मैंने सवाल पूछा।

उनके सामने ये उलझन पैदा हो गई कि इसे हम गोल तो कहते हैं किन्तु ये तो गेंद से अलग हैं। थोड़ी देर वे आपस में बातें करते रहे पर कोई विचार या जवाब उनकी ओर से नहीं आ रहा था। वे मेरी ओर एक अपेक्षा लिए देख रहे थे। बात थोड़ी आगे बढ़े, यह सोचकर मैंने कहा, "देखो! गेंद, चूड़ी और सिक्के जैसी चीज़ें किसी-न-किसी रूप में गोलाई लिए हुए हैं, लेकिन इनमें थोड़े गुण अलग-अलग भी हैं। इनमें से जितनी भी चीज़ें गेंद से मिलती-जुलती हैं उन्हें एक नाम दिया गया है 'गोला'।"

"क्या तुम्हें लगता है चूड़ी और सिक्के जैसी आकृतियों का भी कोई अलग नाम होना चाहिए?"

"हाँ सर! होना तो चाहिए।" कुछ अस्फुट, अस्पष्ट सी प्रतिक्रिया सुनाई दी।

"तुम्हारी किसी किताब में चूड़ी जैसी आकृतियों के बारे में थोड़ी जानकारी दी गई है। तुम चाहो तो वहाँ देख सकते हो।"

छूटते ही बच्चों ने प्रश्न दाग दिया, "कौन-सी किताब में है सरजी?"

मैंने मुस्कुराकर कहा, "भई, यह तो तुमको सोचना पड़ेगा।"

उन्हें यह निश्चित करने में समय नहीं लगा कि यह जानकारी गणित की पुस्तक में हो सकती है। आनन-फ़ानन में तीसरी और चौथी कक्षा की पुस्तकों के पन्ने फड़फड़ाने लगे। जल्दी ही उन्होंने कक्षा चार की गणित की पाठ्यपुस्तक में 'वृत्त' का पाठ ढूँढ़ लिया। दो-चार बच्चे दौड़कर दिखाने मेरे पास भी आ गए। एक होड़ थी, पहले किसने खोजा। इन बच्चों से दूसरे बच्चों ने पाठ या पृष्ठ क्रमांक पूछकर वृत्त का पाठ खोल लिया।

तीसरी कक्षा के बच्चे, चौथी के उन बच्चों के पास चले आए जिनके हाथों में किताब थी।

दो-तीन मिनटों में ही हर किताब के साथ तीन या चार बच्चे थे। जिस बच्चे के सामने किताब रखी थी उसके अगल-बग़ल एक-एक बच्चा और कहीं-कहीं किताब वाले बच्चे की पीठ पर लगभग लदा हुआ चौथा बच्चा भी। कक्षा में आवाज़ें गूँजने लगी थीं। आठ-दस मिनटों के बाद ये गुंजन बाज़ार में उठने वाली आवाज़ में बदल गई। अब वे आपस में बातें कर रहे थे। जिसे शंका थी वह सवाल कर रहा था, जिसे थोड़ा समझ में आया वह आश्वस्त होने के लिए सहमति माँग रहा था, कोई दूसरे को समझाने की कोशिश कर रहा था। गणितीय शब्दों की परिभाषाएँ छत्तीसगढ़ी में रची जा रही थीं। नए उदाहरण, नई व्याख्या की रचना हो रही थी। उन्हें आसपास की कोई सुध नहीं थी। सभी अपने छोटे-छोटे समूहों में बातचीत में खोए थे। कहीं-कहीं दो-तीन समूह इकट्ठे होकर बातें कर रहे थे।

हम बच्चों के बारे में क्या-क्या भ्रान्तियाँ पालकर रखते हैं? वे पढ़ नहीं सकते, वे कुछ जानते नहीं, समझते नहीं और गणित तो कर ही नहीं सकते और भी न जाने कैसी-कैसी सोच हमारे बीच व्याप्त है। लेकिन वह कक्षा कुछ और कहानी कह रही थी। मैंने उन शिक्षक साथियों की ओर चुपके से देखा। वे एकदम चुप खड़े थे मानो उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि दिनभर धमा-चौकड़ी मचाने वाले, नाक में दम करने वाले बच्चे भी इस तरह किताब में डूब सकते हैं।

थोड़ी देर में बच्चों ने कुछ-कुछ नई बातें जान ली थीं। अब वे बताने को उत्सुक थे। उसमें उनके चेहरे पर जो आत्मविश्वास था, आँखों में जो चमक थी वह मैं भुला नहीं सकता। मेरे चेहरे पर मुस्कुराहट आई तो वे सब भी थोड़े शरमाए-से मुस्कुराने लगे।

"कुछ पता चला?" मैंने पूछा।

"हाँ, सरजी!" एक समवेत स्वर उठा।

"तो बताओ।"

"सरजी। चूड़ी विरीत्त (वृत्त) जैसी है", एक बच्चे ने कहा।

"सिक्का भी थोड़ा-थोड़ा विरीत्त (वृत्त) जैसा है।" एक बच्ची ने संकोच के साथ कहा।

"थोड़ा-थोड़ा वृत्त जैसा माने?" मैंने उस बच्ची से पूछा।

"सरजी, चूड़ी के बीच जगह ख़ाली है, सिक्का पूरा भरा-भरा है।"

"अच्छा! और क्या-क्या बातें मालूम हुईं? कोई नया शब्द भी मिला क्या?"

"हाँ सरजी! कई नए शब्द मिले।"

"उनको बोर्ड पर लिखेंगे क्या?" मैंने उनसे पूछा।

"हाँ सरजी।"

कुछ बच्चे उठे। उन्होंने बोर्ड पर ये शब्द लिखे :

आकृति, कील, परकार, केन्द्र, रेखाखण्ड, त्रिज्या, व्यास।

"बढ़िया ! इन्हें थोड़ी देर में समझेंगे। क्या और कोई बात पता चली?" मैंने पूछा।

"सरजी, विरीत्त बनाने का तरीक़ा भी दिया है।" एक बच्ची ने कहा।

"हम लोग पहले से जानते हैं सरजी विरीत्त बनाना। हमारे घर की दीवार में हम लोग इसे बनाते हैं। महावर, सेम के पत्तों का रंग और गोबर में कोयला चूरा मिलाकर रंग बनाकर उसमें भरते हैं। बस विरीत्त नाम भर नहीं जानते थे।"

"अरे वाह, क्या बात है!"

"सरजी! बिल्ला खेलने के लिए भी हम लोग ज़मीन पर चौकोन डिब्बा या विरीत्त बनाते हैं।" एक दूसरी बच्ची ने जोश में भरकर कहा।

लड़के भी चिल्ला पड़े, "इन्हीं लोग ही नहीं जानते सरजी, हम लोग भी गिल्ली खेलने के लिए वृत्त बनाते हैं।"

वृत्त को लेकर उनका ज्ञान फूट-फूटकर बाहर आ रहा था। वृत्त उनके लिए अब केवल एक गणितीय आकृति भर नहीं था। वह उनके खेल, संस्कृति और जीवन का हिस्सा बनकर उभर रहा था। वह अब किताब से बाहर निकलकर हम सभी के आसपास नाचता-खेलता दिखाई पड़ रहा था। मैंने सोचा, देखा जाए उनके पास उनके अपने क्या-क्या तरीक़े हैं वृत्त बनाने के।

मैंने कहा, "तो क्या हम बाहर मैदान में चलें? वहीं सब लोग वृत्त बनाएँगे।" मेरा प्रस्ताव सुनकर उन्हें मज़ा आ गया।

"तो फिर चलो।" मेरे इतना कहने की देर थी, सारे बच्चे एक मिनट से भी कम समय में बरामदे से उतरकर छोटे मैदान में पहुँच गए। उनकी छोटी-छोटी टीमें भी बन गईं। वे उन चीज़ों की जुगाड़ करने में जुट गए जिनसे वृत्त बनाने की कल्पना उनके दिमाग़ में थी। मैदान साफ़ और समतल था। ज़मीन थोड़ी रेतीली थी। थोड़ा खुरचने पर आसानी से निशान बन सकते थे।

हर समूह के तरीक़े अलग-अलग थे। मैं बारी-बारी उनके पास जाकर देखता रहा कि वे क्या कर रहे हैं। सब ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। कोई नया आइडिया सुझा रहा था, कोई लाए गए सामान को देखकर उसपर बातें कर रहा था कि इससे कितना बड़ा वृत्त बन सकेगा। कोई अपने साथियों को निर्देश दे रहा था तो कोई साथी से कह रहा था, "तेरे से नहीं बना। ला, मैं अच्छा वाला बनाता हूँ।" इस बीच यह सारा शोरगुल सुनकर अन्य कक्षाओं के बच्चे भी वहाँ आ गए। उन्हें भी यह सब एक मज़ेदार तमाशा लग रहा था।

सुनील ने उन्हें कहा, "चलो जाओ तुम लोग, कक्षा में बैठो।" मैंने हँसकर कहा, "सुनीलजी! देखने दीजिए इन्हें भी।"

एक समूह में दो बच्चे लकड़ी के टुकड़े का उपयोग कर वृत्त बनाने की कोशिश कर रहे थे। एक बच्चे ने लकड़ी के एक सिरे को ज़मीन पर एक बिन्दु पर टिका रखा था। दूसरे बच्चे ने लकड़ी के दूसरे सिरे पर अपनी तर्जनी इस प्रकार रखी कि यह सिरा ज़मीन से थोड़ा ऊपर उठा हुआ था। वह पीछे की ओर धीरे-धीरे हटता हुआ उँगली से ज़मीन पर निशान बनाता जा रहा था। यह उस समूह की अपनी ईजाद थी। उन्हें यहाँ एक कठिनाई हो रही थी। जब वृत्त पूरा बनने को आता था तब आरम्भ बिन्दु और अन्त बिन्दु ठीक एक जगह पर नहीं आ रहे थे। उन्होंने मिटा-मिटा कर तीन-चार बार कोशिश की पर बात नहीं बनी। जो बच्चा अपनी उँगली से निशान बना रहा था उसने इसका कारण समझ लिया। उसने खीझकर अपने साथी को डाँटा, "बने धर न बे, घेरी-बेरी खसल जात हे। कुछुच्च बुता ला नई करे सकस।" (ठीक से पकड़ न बे, बार-बार खिसक जा रहा है। किसी भी काम को नहीं कर सकता।)

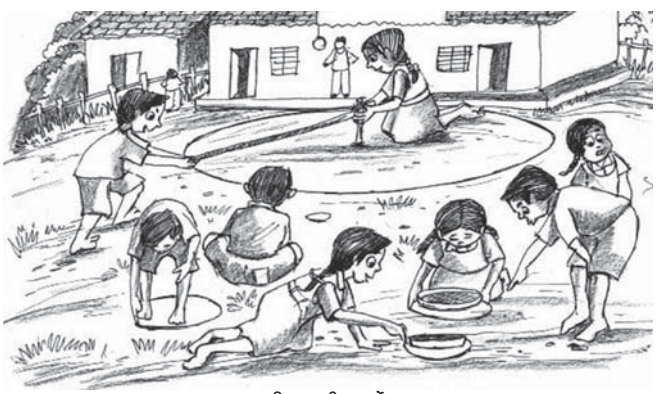

चित्र : हीरा धुर्वे

"रहिबे, ये दारी नई खसलै।" (ठहरो, इस बार नहीं खिसकेगा।)

दूसरे बच्चे ने बिना नाराज़ हुए कहा। उसने पत्थर का एक टुकड़ा लाकर एक छोटा-सा

गड्ढा बनाकर अपनी उँगली रखी और लकड़ी के सिरे को उँगली से सटा लिया।

फिर अपने साथी से कहा, "ले अब बना तो तोर संगे-संग महूं किंदरहूँ।" (ले अब बना तो, तेरे साथ-साथ मैं भी घूमता जाऊँगा।)

उनकी ये बहुत कामयाब कोशिश थी।

मैंने कहा, "कमाल कर दिए तुम लोग तो।"

वहीं पास ही कुछ बच्चियाँ थाली को ज़मीन पर उलटकर वृत्त की आकृतियाँ बना रही थीं। मैंने उनसे कहा, "वृत्त से दीवार पर जो चित्र बनाती हो वह बनाओ। मैं देखना चाहता था कि वे वृत्त की परिधि पर केन्द्र का चुनाव कर

चित्र : तरन्नुम निशा

नए वृत्त का चित्र कैसे बनाती हैं। उन्होंने पहले एक वृत्त बनाया। बड़ी सावधानी से ठीक बीच की जगह चुनकर एक निशान बनाया। यह वृत्त का केन्द्र था, यह बात और थी अभी उन्हें यह नाम और इसका अर्थ मालूम नहीं था। अब थाली को उठाकर उसे वृत्त पर इस तरह रखा कि थाली का किनारा केन्द्र को छू रहा था। थाली के किनारे-किनारे लकड़ी से कुरेदकर उन्होंने दूसरा वृत्त बनाया। कमाल तो तब हुआ जब उन्होंने इस दूसरे वृत्त का केन्द्र पहले वृत्त की परिधि पर बनाया और तीसरा वृत्त बनाने के लिए थाली का किनारा पहले और दूसरे केन्द्र से छूते हुए रखा। मैं उनके इस स्वाभाविक ज्ञान से चकित था। इसी तरह उन्होंने पहले वृत्त की परिधि पर केन्द्र रखते हुए छह वृत्त बनाए। पूरी आकृति में इतनी सुन्दर सममिति थी कि क्या कहूँ। बचपन में ऐसी आकृतियाँ हमारी पीढ़ी के लोगों ने भी बनाईं लेकिन हम लोगों ने परकार जैसी चीज़ों का उपयोग किया था। इन बच्चियों ने अद्‌भुत काम किया था।

बच्चियों का एक दूसरा समूह अलग ही ढंग से काम कर रहा था। वे अपने पाँव को ज़मीन पर घुमाकर अँगूठे से वृत्त उकेर रहे थे। उनकी एड़ी उस वृत्त के केन्द्र पर थी। उन्होंने भी बीच वाले वृत्त के चारों ओर छह वृत्त बनाए थे किन्तु ये सभी बाहरी वृत्त भीतरी वृत्त को केवल स्पर्श कर रहे थे। गणितीय दृष्टि से यह काम अधिक कठिन था। पहले वृत्त को बनाने के बाद एड़ी कहाँ रखें कि बनने वाला दूसरा वृत्त पहले को स्पर्श करे। इससे ज़्यादा मुश्किल तीसरे वृत्त का केन्द्र निर्धारित करना था क्योंकि तीसरा वृत्त पहले और दूसरे को स्पर्श करता हुआ बनना था। यदि इसे आप परकार से बनाने का प्रयत्न करें तो कठिनाई का अनुमान ज़रूर लगा पाएँगे।

एक और समूह की ओर मैंने देखा। एक बच्चे ने पेंट में से अपनी बेल्ट निकाल ली थी उसे लेकर अपने साथियों से कुछ कह रहा था।

मैं उनके नज़दीक गया। देखा कि वे किताब में दिए तरीक़े को आज़माने की बात कर रहे थे। उन्होंने बेल्ट को रस्सी के विकल्प के रूप में चुना था। मैंने उन सबकी पीठ थपथपाई और कहा, "बनाओ।"

थोड़ी देर में सभी समूहों ने वृत्त बना लिए। कुछ के तरीक़े मिलते-जुलते थे तो कुछ के एकदम अलग और अनूठे। एक बात और हुई। सबने एक दूसरे के काम को देखा, काम करने के तरीक़े को समझा। मैंने सोचा था बारी-बारी से हर समूह से कहूँगा कि अपने काम के बारे में बताएँ। पर इसकी ज़रूरत नहीं पड़ी, उन्होंने ख़ुद से यह कर लिया।

सभी बच्चों को मैंने अपने पास बुलाया। उनसे कहा कि सब ख़ुद के और अपने साथियों

के लिए ज़ोर से तालियाँ बजाएँ। बड़ी ज़ोर की गड़गड़ाहट हुई।

मैंने कहा, "बच्चो! तुम सभी ने बहुत बढ़िया तरीक़े से काम किया है। मैं सोच भी नहीं सकता था कि तुम इतने तरीक़ों से वृत्त बना सकते हो। मैं 'वृत्त' शब्द को ज़ोर से बोल रहा था ताकि वे ठीक से इस नए शब्द की ध्वनि सुन सकें। तुमने बोर्ड में जो कठिन शब्द लिखे थे उनमें केन्द्र और त्रिज्या जैसे शब्द थे। अब तुम सभी को अपने-अपने वृत्त में केन्द्र व त्रिज्या को पहचानना और बताना है। इस काम के लिए तुम अपनी पुस्तक को एक बार फिर ध्यान से देख सकते हो।

उन्होंने पाठ के उस हिस्से को पढ़ा। आपस में बातें कीं। मुझे अपने-अपने वृत्तों के पास ले गए। वृत्त का केन्द्र बताया और त्रिज्या खींचकर दिखाई। इस बात की गुंजाइश ही नहीं छोड़ी कि मैं उन्हें कुछ बताऊँ।

उनके कुछ संशय अभी दूर नहीं हुए थे, जैसे– केन्द्र और त्रिज्या के नाम में अक्षरों का प्रयोग। एक बच्ची ने पूछ ही लिया, "क ख और प म क्या हैं?" मैंने कहा, "जैसे तुम्हारा, मेरा, हम सभी का कोई-न-कोई नाम है, वैसे ही हम अपने आसपास की सभी चीज़ों का नाम रखते हैं जिससे उनके बारे में बातचीत हो सके।" उन्होंने नामकरण के इस पैटर्न को समझा या नहीं, यह जाँचने के लिए मैंने कहा, "तुम सबने जो वृत्त बनाए हैं उनमें केन्द्र और त्रिज्याओं के नाम लिखो।" उन्होंने थोड़ी मशक़्क़त के बाद यह भी कर लिया। एक मज़ेदार बात और हुई। जिस बच्चे ने जिस वृत्त को बनाया था उसे दूसरे बच्चे उस वृत्त की त्रिज्या के नाम से बुलाने लगे, "ए प न"!

"काय रे म स?" (क्या है रे म स?)

"तोर विरीत्त ह तो अब्बड़ जनिक है।" (तेरा वृत्त तो बहुत ही बड़ा है।)

"हा हो! मोर विरीत्त के तिरिज्जा घलोक बड़ जनिक हे।" (हाँ! मेरे वृत्त की त्रिज्या भी तो बड़ी है।)

उनके उच्चारण पर बार-बार मेरा ध्यान जा रहा था। किन्तु मैं इसपर उन्हें कुछ कहना नहीं चाह रहा था। ये शब्द उनके लिए अनसुने थे। मैं कोशिश कर रहा था कि जब भी त्रिज्या, वृत्त शब्द बोलूँ तो ज़ोर से और स्पष्ट बोलूँ। देर-सवेर वे ख़ुद ही इसे ठीक कर लेंगे।

बहुत समय तक बच्चों ने काम किया। अभी भी कुछ चीज़ों पर बात नहीं हो सकी थी। मैंने एक सवाल पूछा, "तुम सबने अपने-अपने वृत्त में एक-एक त्रिज्या बनाई है, क्या वृत्त में एक से ज़्यादा त्रिज्या बन सकती हैं?" बच्चे एक दूसरे की ओर देखने लगे।

धूप थोड़ी तेज़ होने लगी थी। मैंने कहा, "चलो अब कक्षा में चलें।" कक्षा में दीवारों पर तीन फीट ऊँचाई तक चारों ओर काला पेंट लगा हुआ था, जिसका उपयोग बच्चे बोर्ड की तरह करते थे। मैंने कहा, "दीवार वाले बोर्ड पर फिर से एक-एक वृत्त बना लेना। अब रस्सी, लकड़ी या धागे की ज़रूरत नहीं है। अनुमान से बनाना। देखना है कि एक से ज़्यादा त्रिज्या बन सकती हैं क्या?"

सभी बच्चे हॉल में आकर दीवार किनारे बैठ गए। फ्रीहैण्ड ड्राइंग से उन्होंने वृत्त बनाया। केन्द्र से परिधि तक उन्होंने लाइनें खींचनी शुरू

कर दीं। उन्हें यह समझने में वक़्त नहीं लगा कि केन्द्र से शुरू करके परिधि के किसी भी बिन्दु तक जो सीधी लाइन खींची जाएगी वह त्रिज्या ही होगी।

जवाब आने लगे, "बाईस तिरिज्जा बनिस सरजी।"

"मोर विरीत्त पैंतीस ठन बनगे।"

"मैं सैंतालिस ठन बना डारें, तोर ले जादा।"

"सरजी! जतका बनाए बर चाही, ओकर ले जादा बन जाही।"

"हाँ सरजी! अब्बड़ अकन तिरिज्जा बन सकत हे।"

बच्चों के पास त्रिज्या की शाब्दिक परिभाषा नहीं थी किन्तु उन्होंने उसका अर्थ बना लिया था। उनके पास अनन्त शब्द नहीं था किन्तु 'अब्बड़ अकन' यानी बहुत सारी त्रिज्या बनाई जा सकती हैं, जितनी चाहें उससे भी ज़्यादा... यह समझ लिया था। मैंने उन सभी बच्चों के लिए तालियाँ बजाईं, उनके सभी शिक्षक मेरा साथ दे रहे थे। बच्चे उन्हें आश्चर्य से देख रहे थे।

मैंने कक्षा यहीं ख़त्म की। बच्चों के बाहर जाने के बाद मैंने शिक्षकों से कहा, "यदि वे इस कक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहना-पूछना चाहते हैं तो कहें।" दिव्या के सवाल बच्चों के उच्चारण दोष को लेकर थे, "आपने सुधारा क्यों नहीं?" विराज ने कहा, "बच्चे किताब पढ़ रहे थे समझ भी रहे थे। मैंने कभी यह सोचा नहीं था।" गोकुल का कहना था, "थोड़ी-सी बात बताने के लिए बहुत समय लग गया। ये बातें दस मिनट से कम समय में समझाई जा सकती थीं।" सुनील ने इसका जवाब इस तरह दिया, "यही तो बड़ा फ़र्क़ था। बच्चों को कुछ भी समझाया नहीं गया, फिर भी सभी बच्चों ने समझा और ख़ुद से समझा, एक दूसरे से समझा, पढ़कर, करके समझा। सर ने या तो सवाल किए या कुछ सुझाया।" क़रीब आधे-पौन घण्टे उनके साथ जो बातें हुईं वे मेरे लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। संकुल समन्वयक आए तब बातचीत को विराम देना पड़ा। मुझे उनके साथ ही लौटना था।

डॉ. सुधीर श्रीवास्तव ने विगत चार दशकों तक डाइट और एससीईआरटी छत्तीसगढ़ में विभिन्न भूमिकाओं में कार्य किया है। आप अध्यापन, लेखन और शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों से सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। राज्य की गणित की पाठ्यपुस्तकों की रचना में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आप कई महत्त्वाकांक्षी शैक्षिक योजनाओं को छत्तीसगढ़ राज्य में क्रियान्वित करने में मुख्य भागीदार रहे हैं। साथ ही विभिन्न शैक्षिक तथा बाल-पत्रिकाओं में लेखन और सम्पादन कार्य का हिस्सा रहे हैं।

सम्पर्क : shrivastavasudhir512@gmail.com